बारहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः । वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ ॥१॥
वीथ्याश्रयाणि ऋक्षाणि ध्रुवाधारेण वेगिना। ह्रासवृद्धिक्रमस्तस्य रश्मीनां सवितुर्यथा ॥२॥
अर्कस्येव हि तस्याश्वाः सकृद्युक्ता वहन्ति ते। कल्पमेकं मुनिश्रेष्ठ वारिगर्भसमुद्भवाः ॥३॥
क्षीणं पीतं सुरैः सोममाप्याययति दीप्तिमान्। मैत्रेयैककलं सन्तं रश्मिनैकेन भास्करः ॥४॥
क्रमेण येन पीतोऽसौ देवैस्तेन निशाकरम्। आप्याययत्यनुदिनं भास्करो वारितस्करः ॥५॥
सम्भृतं चार्धमासेन तत्सोमस्थं सुधामृतम्। पिबन्ति देवा मैत्रेय सुधाहारा यतोऽमराः ॥६॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च । त्रयस्त्रिंशत्तथा देवाः पिबन्ति क्षणदाकरम् ॥७॥
कलाद्वयावशिष्टस्तु प्रविष्टः सूर्यमण्डलम्। अमाख्यरश्मौ वसति अमावास्या ततः स्मृताः ॥८॥
अप्सु तस्मिन्नहोरात्रे पूर्वं विशति चन्द्रमाः । ततो वीरुत्सु वसति प्रयात्यर्कं ततः क्रमात् ॥९॥
छिनत्ति वीरुधो यस्तु वीरुत्संस्थे निशाकरे । पत्रं वा पातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विन्दति ॥१०॥
सोमं पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके । अपराहणे पितृगणा जघन्यं पर्युपासते ॥११॥
पिबन्ति द्विकलाकारं शिष्टा तस्य कला तु या। सुधामृतमयी पुण्या तामिन्दोः पितरो मुने ॥१२॥
निस्सृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः सुधामृतम् । मासं तृप्तिमवाप्याग्र्यां पितरः सन्ति निर्वृताः ।
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ॥१३॥

नवग्रहों का वर्णन

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— सोम का रथ तीन चक्कों वाला है और बायें से दक्षिण ओर जुते हुए कुन्द के समान धवल दश घोड़े हैं ॥१॥ ध्रुव के आधार पर स्थित वेगवान् रथ पर चन्द्रमा भ्रमण करते हैं, ये नागवीथी पर आश्रित नक्षत्रों का भोग करते हैं । सूर्य के ही समान इनकी भी रश्मियाँ का ह्रास और वृद्धि होती है ॥१-२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! समुद्र से उत्पन्न उनके भी अश्व एक बार रथ में जोत दिये जाने पर कल्प पर्यन्त चलते रहते हैं ॥३॥ देवताओं द्वारा पी लेने के कारण क्षीण हुए चन्द्रमा को सूर्य अपनी एक रश्मि से पुष्ट करते हैं ॥४॥ जिस क्रम से देवता चन्द्रमा की कलाओं का पान करते हैं जल का शोषण करने वाले सूर्यदेव भी उसी क्रम से प्रतिदिन शुक्ल प्रतिपदा से चन्द्रमा का पोषण करते हैं ॥५॥ आधे मास में चन्द्रमा में एकत्रित उत्तम अमृत का हे मैत्रेय ! देवगण पान करते हैं । क्योंकि देवताओं का आहार अमृत ही है ॥६॥ तैंतिस हजार तैंतिस सौ तैंतिस (३३३३३३) देवता चन्द्रमा का पान करते हैं ॥७॥ जब चन्द्रमा की दो कला बच जाती हैं, उस समय चन्द्रमा सूर्य में प्रवेश कर जाते हैं । उस समय चन्द्रमा सूर्य की अमा नामक रश्मि में रहते हैं, अतएव उसे अमावस्या कहते हैं ॥८॥ उस दिन और रात को चन्द्रमा जल में प्रवेश कर जाते हैं, उसके बाद वे वृक्षों में रहते हैं फिर वे सूर्य में जाते हैं ॥९॥ अमावस्या के दिन जब चन्द्रमा वृक्ष में निवास करते हैं, उस दिन यदि कोई वृक्ष को काटता है, अथवा उसका एक पत्ता भी तोड़ता है तो उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥१०॥ सोम का जब पन्द्रहवाँ अंश थोड़ी सी एक कला बच जाती है तो उस समय उसे दोपहर के बाद पितृगण घेर लेते हैं ॥११॥ दो कलाओं के आकार वाले चन्द्रमा की जो एक कला बची रहती है, उसका वे पान करते हैं । हे मुने ! चन्द्रमा की पवित्र कला अमृतमयी होती है ॥१२॥ किरणों

एवं देवान् सिते पक्षे कृष्णपक्षे तथा पितॄन्। वीरुधश्चामृतमयैः शीतैरप्परमाणुभिः ॥१४॥
वीरुधौषधिनिष्पत्त्या मनुष्यपशुकीटकान्। आप्याययति शीतांशुः प्रकाश्याह्लादनेन तु ॥१५॥
वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतश्च च। पिशङ्गैस्तुरगैर्युक्तः सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभिः ॥१६॥
सवरूथः सानुकर्षो युक्तो भूसम्भवैर्हयैः। सोपासङ्गपताकस्तु शुक्रस्यापि रथो महान् ॥१७॥
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान्भौमस्यापि रथो महान्। पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः ॥१८॥
अष्टाभिः पाण्डुरैर्युक्तो वाजिभिः काञ्चनो रथः। तस्मिंस्तिष्ठति वर्षान्ते राशौ राशौ बृहस्पतिः ॥१९॥
आकाशसम्भवैरश्वैः शबलैः स्यन्दनं युतम्। तमारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चरः ॥२०॥
स्वर्भानोस्तुरगा ह्यष्टौ भृङ्गाभा धूसरं रथम्। सकृद्युक्तास्तु मैत्रेय वहन्त्यविरतं सदा ॥२१॥
आदित्यान्निस्सृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु। आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ॥२२॥
तथा केतुरथस्याश्वा अप्यष्टौ वातरंहसः। पलालधूमवर्णाभा लाक्षारसनिभारुणाः ॥२३॥
एते मया ग्रहाणां वै तवाख्याता रथा नव। सर्वे ध्रुवे महाभाग प्रबद्धा वायुरश्मिभिः ॥२४॥
ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे बद्धान्यशेषतः। भ्रमन्त्युचितचारेणमैत्रेयानिलरश्मिभिः ॥२५॥
यावन्त्यश्चैव तारास्तास्तावन्तो वातरश्मयः। सर्वे ध्रुवे निबद्धास्ते भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम् ॥२६॥
तैलपीडा यथा चक्रं भ्रमन्तो भ्रामयन्ति वै। तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातविद्धानि सर्वशः ॥२७॥
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु। यस्माज्ज्योतींषि वहति प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥२८॥

के माध्यम से निकली हुयी उस अमृतमयी कला का पान करके पितृगण एकमास तक अत्यन्त तृप्त रहते हैं। वे पितृगण तीन प्रकार के हैं, सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वाता ॥१३॥ इस तरह चन्द्रमा शुक्लपक्ष में देवताओं का कृष्णपक्ष में पितरों का, शीतल अमृतमय जल के कणों से वृक्षों आदि, ओषधि, लता आदि को उत्पन्न करके मनुष्यों, पशुओं और कीड़ों का अपने प्रकाश के द्वारा आह्लादित करके पोषण करते हैं ॥१४-१५॥ चन्द्रमा के पुत्र बुध का रथ वायु तथा अग्निद्रव्य से उत्पन्न है। उसमें पिशङ्ग वर्ण के घोड़े जुते हैं। वे घोड़े वायु के समान वेग वाले और आठ हैं ॥१६॥ वरुथ रथ की रक्षा के लिए लोहे का आवरण अनुकर्ष (रथ के बीच का भाग) और उपसङ्ग (शस्त्रों के रखने के स्थान) तथा पताका से युक्त शुक्र का भी रथ महान् है ॥१७॥ भौम का भी सुवर्ण निर्मित रथ आठ घोड़े वाला है तथा महान् है। अग्नि से उत्पन्न पद्मरागमणि के समान लाल रङ्ग के उसमें घोड़े हैं ॥१८॥ पांडर (पीले) वर्ण के आठ घोड़े से युक्त, स्वर्ण निर्मित रथ में बृहस्पति बैठते हैं और एक-एक राशि पर एक-एक वर्ष तक रहते हैं ॥१९॥ मन्दगामी शनि देव आकाश से उत्पन्न शबल (चित्रविचित्र) वर्ण के घोड़े वाले रथ से चलते हैं॥२०॥ राहु के आठ घोड़े भौरों के समान काले हैं, रथ धूसर वर्ण का है, वे घोड़े एक बार जोते जाने पर सदा चलते रहते हैं ॥२१॥ चन्द्रपर्व (पूर्णिमा) को सूर्य से निकलकर राहु चन्द्रमा के पास जाता है और अमावस्या के दिन वह चन्द्रमा से निकलकर सूर्य के पास आता है ॥२२॥ राहु के रथ के भी घोड़े आठ तथा पुआल के वर्ण वाले और वायु के समान वेग वाले हैं तथा लाक्षारस के समान लाल वर्ण के हैं ॥२३॥ हे महाभाग ! इन नवग्रहों के रथों का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया ये सब वायु रूपी रस्सी से ध्रुव में बँधे हैं ॥२४॥ ग्रह, नक्षत्र और तारा मण्डल ये सबके सब ध्रुव से वायु रूपी रस्सी से बँधे हैं। हे मैत्रेय ! ये सब उचित मार्ग से घूमते रहते हैं ॥२५॥ जितने तारा हैं, उतनी ही वायु रूपी रस्सियाँ हैं। वे सब ध्रुव में बँधकर घूमते हुए ध्रुव को भी घुमाते रहते हैं ॥२६॥ जिस तरह तेली स्वयं घूमते हुए कोल्हू को घुमाते हैं उसी तरह से वायु से बँधे हुए ग्रहगण घूमते रहते हैं ॥२७॥ वायु चक्र से प्रेरित होकर

शिशुमारस्तु यः प्रोक्तः स ध्रुवो यत्र तिष्ठति। सन्निवेशं च तस्यापि शृणुष्व मुनिसत्तम ॥२९॥
यदह्ना कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निशि मुच्यते। यावन्त्यश्चैव तारास्ताः शिशु माराश्रिता दिवि।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवत्यभ्यधिकानि च ॥३०॥
उत्तानपादस्तस्याधो विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः। यज्ञोऽधरश्च विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः ॥३१॥
हृदि नारायणश्चास्ते अश्विनौ पूर्वपादयोः। वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी॥३२॥
शिश्नः संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपानं समाश्रितः ॥३३॥
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च कश्यपोऽथ ततो ध्रुवः। तारका शिशुमारस्य नास्तमेति चतुष्टयम्॥३४॥
इत्येष सन्निवेशोऽयं पृथिव्या ज्योतिषां तथा। द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां च कीर्तितः॥३५॥
वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै। तेषां स्वरूपमाख्यातं संक्षेपः श्रूयतां पुनः ॥३६॥
यदम्बु वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा। पद्माकारा समुद्भूता पर्वताब्ध्यादिसंयुता॥३७॥

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य ॥३८॥
ज्ञानस्वरूपो भगवान्यतोऽसावशेषमूर्तिर्न तु वस्तुभूतः ।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदाञ्जानीहि विज्ञानविजृम्भितानि ॥३९॥
यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्वं कर्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम्।
तदा हि सङ्कल्पतरोः फलानि भवन्ति नो वस्तुषु वस्तु भेदाः ॥४०॥

वे सब आलात चक्र (बनेठी) के समान घूमते हैं। चूकि ये ग्रहगण घूमते रहते हैं, अतएव ये प्रवाह कहलाते हैं॥२८॥ जो मैंने शिशुमार चक्र बतलाया है, जिसमें ध्रुव प्रतिष्ठित हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! उस शिशुमार चक्र की स्थिति का वर्णन सुनो ॥२९॥ मनुष्य दिन में जो पाप करता है, रात्रि में उस शिशुमार चक्र का दर्शन करके उन पापों से मुक्त हो जाता है। सभी तारा शिशुमार में ही प्रतिष्ठित हैं। उतने ही वर्ष वह (ध्रुव) जीवित रहता है ॥३०॥ उत्तानपाद उसकी ऊपर की हनु (ठोढी) हैं। उसके नीचे की ठोढी यज्ञ को जानना चाहिएं। धर्म ही उसका शिर है॥३१॥ उसके हृदय में नारायण हैं। उसके दोनों चरणों में दोनों अश्विनी कुमार हैं। उसकी जंघाओं में वरुण और अर्यमा हैं। उसका (शिशुमार चक्र का) शिश्न (लिङ्ग) संवत्सर है। मित्र देवता उसके अपान स्थान में हैं ॥३२-३३॥ उसके पुच्छ भाग में अग्नि महेन्द्र और कश्यप हैं। उसके बाद ध्रुव और तारागण हैं। शिशुमार चक्र के पुच्छ भाग में स्थित अग्नि आदि चार तारे कभी भी अस्त नहीं होते हैं ॥३४॥ इस तरह मैंने तुम्हें पृथिवी, ग्रहगण, द्वीपों, समुद्रों, पर्वतों, वर्षों, नदियों तथा उनमें रहने वाले जीवों का वर्णन सुनाया। अब उन सबों को संक्षेप में फिर सुनो॥३५-३६॥ हे विप्र ! जो जल भगवान् विष्णु का शरीर है उससे पर्वत तथा समुद्र आदि से युक्त कमलाकृति पृथिवी उत्पन्न हुयी। हे विप्रवर्य ! ग्रहगण, भुवन, वन, पर्वत, दिशाएँ, नदियाँ, समुद्र ये सभी वस्तुएँ तथा जो हैं और जो नहीं हैं, वह सबकुछ भगवान् विष्णु ही हैं ॥३८॥ चूकि भगवान् ज्ञान स्वरूप हैं, सम्पूर्ण जगत् उसका मूर्तरूप है, किन्तु वे परिच्छिन्न पदार्थाकार नहीं हैं। उनसे ही उत्पन्न पर्वत, समुद्र तथा पृथिवी आदि को ज्ञान स्वरूप भगवान् विष्णु का विलास समझो ॥३९॥ जब जीवों के समस्त कर्मों का नाश हो जाता है, उस समय समस्त दोषों से रहित आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उस समय सङ्कल्परूपी वृक्ष के फल स्वरूप वस्तुओं में वस्तु के भेद की प्रतीति नहीं होती है ॥४०॥ अस्ति शब्दाभिधेय आदि, मध्य और अन्त से रहित, सदा एक समान बना रहने वाला

वस्त्वस्ति किं कुत्रचिदादिमध्यपर्यन्तहीनं सततैकरूपम् ।
यच्चान्यथात्वं द्विज याति भूयो न तत्तथा तत्र कुतो हि तत्त्वम् ॥४१॥
मही घटत्वं घटतः कपालिका कपालिका चूर्णरजस्ततोऽणुः ।
जनैः स्वकर्मस्तिमितात्मनिश्चयैरालक्ष्यते ब्रूहि किमत्र वस्तु ॥४२॥
तस्मान्न विज्ञानमृतेऽस्ति किञ्चित्क्वचित्कदाचिद्द्विज वस्तुजातम् ।
विज्ञानमेकं निजकर्मभेदविभिन्नचित्तैर्बहुधाभ्युपेतम् ॥४३॥
ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोकमशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम् ।
एकं सदैकं परमः परेशः स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति ॥४४॥
सद्भाव एवं भवतो मयोक्तो ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत् ।
एतत्तु यत्संव्यवहारभूतं तत्रापि चोक्तं भुवनाश्रितं ते ॥४५॥
यज्ञः पशुर्वह्निरशेषऋत्विक् सोमः सुराः स्वर्गमयश्च कामः ।
इत्यादिकर्माश्रितमार्गदृष्टं भूरादिभोगाश्च फलानि तेषाम् ॥४६॥
यच्चैतद्भुवनगतं मया तवोक्तं सर्वत्र व्रजति हि तत्र कर्मवश्यः ।
ज्ञात्वैवं ध्रुवमचलं सदैकरूपं तत्कुर्याद्विशति हि येन वासुदेवम् ॥४७॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे द्वितीयेंऽशे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

पदार्थ है, वह कभी नास्ति शब्द से कहने योग्य नहीं होता है, अतएव कोई अचित् वस्तु वैसी है ही नहीं जो वस्तु प्रतिक्षण विकृत होती रहती है, वह उत्तरोत्तरावस्था की प्राप्ति के कारण, वैसी होती ही नहीं है अतएव वह सर्वदा शब्दाभिधेय ही है ॥४१॥ देवता, मनुष्य आदि जीव अपने कर्मजन्य भोगों के कारण, एक ही वस्तु को पृथिवी, घट, तज्जन्य कपाल, कपालजन्य चूर्ण, तज्जन्य रज, रजजन्य परमाणु रूप से अनुभव करते हैं । इनमें कौन सी अवस्था तात्त्विक है ॥४२॥ अतएव ज्ञान स्वरूप परमात्मा से भिन्न कुछ भी कहीं भी, कभी भी कोई वस्तु नहीं है । अकेला ही विज्ञान कर्मभेदों के कारण विभिन्न प्रकार से प्रतीत होता है ॥४३॥ आत्मा (परमात्मा) ज्ञान स्वरूप, विमल, शोक रहित, सम्पूर्ण लोभ आदि से रहित है । वह सदा एक रूप, सर्वश्रेष्ठ, सभी स्वामियों का भी स्वामी तथा वासुदेव हैं। उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है ॥४४॥ इस तरह तुम्हें मैंने सद्भाव का तथा ज्ञान के स्वरूप का उपदेश किया । ज्ञान स्वरूप परमात्मा ही सत्य हैं उनसे भिन्न सारी वस्तुएँ असत्य है और लोक में देव, मनुष्य आदि व्यवहार का हेतु तो कर्म ही है ॥४५॥ यज्ञ, यज्ञपशु, अग्नि, ऋत्विक्, सोम, देवता, स्वर्गादिलोक तथा उनको प्राप्त करने की कामना। ये सबके सब कर्ममार्ग के विषय हैं, और भूलोक आदि के भोग उन कर्मों के फल हैं ॥४६॥ ये सारी वस्तुएँ जिन सबों को मैंने तुम्हें बतलाया है, उन सबों को कर्मवश्य जीव प्राप्त करता है । इन सारी बातों को जानकर जीव को वही करना चाहिए जिससे कि वह ध्रुव, अचल तथा सदा एकरूप रहने वाले श्रीभगवान् वासुदेव को प्राप्त कर ले ॥४७॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के दूसरे अंश के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥